

आधे अधूरे : बिखरे संबंधों की छानबीन

‘आधे-अधूरे’ नाटक में पात्रों के व्यक्तित्व का अधूरापन पारिवारिक मूल्यों को तहस-नहस करता हुआ नज़र आता है। इस नाटक ने पारिवारिक संबंधों के बारीक रेशों को बड़ी सफाई से छुआ है। मोहन राकेश के समय से लेकर अब तक समाज एक लंबा सफर तय कर चुका है। और वक्त के साथ पारिवारिक समस्याएं भी उलझती चली गई हैं। आज सिर्फ इन समस्याओं को पहचानना ही काफी नहीं है। बल्कि इनसे बाहर निकलने के लिए इनके कारणों की छानबीन भी बेहद जरूरी है। ‘आधे-अधूरे’ नाटक में समस्याओं की छानबीन के लिए उपयुक्त आधार प्रदान करने की ताकत है। मोहन राकेश की परखी नजर और पारिवारिक स्तर की समस्याओं को बारीकी से उभारने की हुनर के कारण ही इस नाटक में यह ताकत आ पाई है।

नाटक के आरंभ में ही काले सूट वाले आदमी की बातों से उस युग की दो खास बातों का अंदाजा लगाया जा सकता है। पहला अनिश्चितता का भाव और दूसरा कारण-कार्य संबंध की अवहेलना। इस संदर्भ में इस आदमी का यह कथन द्रष्टव्य है-

“इस नाटक के संबंध में नहीं कह सकता। क्योंकि यह नाटक भी अपने में मेरी तरह अनिश्चित है। अनिश्चित होने का कारण यह है कि...परंतु कारण की बात करना बेकार है। कारण हर चीज का कुछ न कुछ होता है, हालाँकि यह आवश्यक नहीं कि जो कारण दिया जाए, वास्तविक कारण वही हो।”¹ ऐसे हालात में समाज में उद्देश्यहीनता का फैलना स्वाभाविक है। उद्देश्यहीनता की समस्या सावित्री के परिवार के सदस्यों में साफ दिखाई देती है।

दरअसल समाज के स्वस्थ विकास में सहायक कई अवधारणाएं आज अपने अर्थ खो चुकी हैं। विवाह की अवधारणा भी ऐसी ही एक अवधारणा है। वैदिक विवाह का आधार वेदांग का कल्पसूत्र है। कल्पसूत्र के अंतर्गत गृहसूत्र में 16 संस्कारों का विधान है। इन संस्कारों में विवाह भी एक है। विवाह के सात फेरों के दौरान सात वचन लिए जाते हैं जिन्हें सप्तपदी कहते हैं। विवाह के सात फेरे तो आज भी लिए जाते हैं लेकिन फेरों के दौरान लिए गए वचनों को ठीक से समझने और जीवन में अपनाने वाले नहीं मिलते। दरअसल इन सात फेरों के साथ लिए गए वचनों में अपने और विश्व की शांति और सुख की कल्पना की जाती है।² सावित्री और महेन्द्रनाथ के दामपत्य संबंध में विवाह की वास्तविक अवधारणा का एक अंश भी नहीं मिलता। इसलिए विश्व की शांति तो दूर की बात है इस परिवार की अपनी सुख शांति यहां तक कि इसके सदस्यों की व्यक्तिगत शांति का सवाल भी हाशिए पर आ गया है। सावित्री-महेन्द्रनाथ का संबंध विवाह के वास्तविक उद्देश्य की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। इस दम्पति के संबंध से जुड़ी यह हकीकत परिवार के सदस्यों की उद्देश्यहीनता के कारणों में शामिल है। यह परिवार दरअसल उस युग के मध्यवर्गीय परिवारों का प्रतिनिधित्व करता है। उद्देश्यहीनता का यह मर्ज समाज को

बुरी तरह प्रभावित कर रहा है। इसलिए इसके पैदा होने के कारणों की गहराई से छानबीन करना आज जरूरी हो गया है।

गौर से देखें तो बाजार लोगों की इच्छाओं को बढ़ा देता है। इच्छाओं को पूरा करने के लिए लोग प्रतिद्वंद्विता की जमीन पर उतर आते हैं। प्रतिद्वंद्विता के इस बाजार में जो इच्छा-ज्ञान और क्रिया के बीच सामंजस्य नहीं रख पाते वे मानसिक या भौतिक दृष्टि से बदहाली का शिकार होते हैं। इस संदर्भ में प्रसाद की यह पंक्तियां याद आती हैं-

“ ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की
एक दूसरे से न मिल सके
यही विडम्बना है जीवन की।”³

बाजार की हवा से फूलकर उड़ने वाली इच्छा भ्रमक इच्छा है। वह व्यक्ति के ज्ञान शक्ति एवं सीमाओं का जायजा नहीं लेती। ऐसी इच्छा मृग मरीचिका की तरह आदमी को दौड़ाती है और बुद्धि को नष्ट कर देती है। ऐसी इच्छा से उद्देश्यहीनता पैदा होती है। इस इच्छा के पीछे दौड़ने वाला व्यक्ति या तो औंधे मुँह गिरकर बर्बाद हो जाता है या फिर अपनी आत्मा बेचकर जीवन भर पूंजी का दास बनकर जीता है। उसके जीवन का कोई सकारात्मक उद्देश्य नहीं रह जाता। बहुत कम लोग ऐसे होते हैं जो बाजारवादी दौर में इच्छा का संतुलित विकास करते हुए ज्ञान और क्रिया के साथ उसका सामंजस्य स्थापित कर पाते हैं। महेन्द्रनाथ में पत्नि की विकृत इच्छा को तुष्ट करने के लिए अधिक से अधिक धन कमाने की इच्छा थी लेकिन उसमें व्यवहारिक ज्ञान का अभाव था। तभी वह जुनेजा के साथ व्यवसाय शुरू करके भी आगे नहीं बढ़ पाया। दरअसल अपने ज्ञान के स्तर को नापे बगैर इच्छाओं के पीछे भागने के कारण महेन्द्रनाथ ने मुँह की खाई। और फिर सलीके से उठ नहीं पाया। सावित्री उसे चाभी भरने वाले खिलौने की तरह चलाती रही। जब उसका अहं विद्रोह कर उठता तब वह घर से बाहर चला जाता। इस संदर्भ में पुरुष एक का यह कथन द्रष्टव्य है-

“सचमुच महसूस करता हूँ। मुझे पता है, मैं एक कीड़ा हूँ जिसने अंदर ही अंदर इस घर को खा लिया है। (बाहर के दरवाजे की तरफ चलता) पर अब पेट भर गया है मेरा। हमेशा के लिए भर गया है (दरवाजे के पास रुककर) और बचा भी क्या है जिसे खाने के लिए और रहता रहूँ यहाँ ? (चला जाता है)”⁴

एक बात स्पष्ट है कि महेन्द्रनाथ जिन्दगी की उलझी हुई गुथी को सुलझाने में असमर्थ है। सावित्री की खरी खोटी बातें इस मर्ज का इलाज नहीं है। उसे मानसिक दृढ़ता के साथ नई दिशा तलाशने के लिए किसी सहानुभूतिपूर्ण साथ की जरूरत थी। जो उसे

कभी मिल नहीं पाया। सावित्री अपने इच्छाओं के सागर में डूबती उतरती रही। महेन्द्रनाथ से अगर नहीं बन पाया तो पर पुरुष से इच्छापूर्ति की राहें तलाशती रही।

सावित्री का बेटा शिक्षित होने के बावजूद रोजी रोटी कमाने की कोशिश नहीं करता। छोटी लड़की में कम उम्र में ही सयानापन आता जा रहा है। संतानों को व्यावहारिक शिक्षा दिए जाने के बावजूद उनमें वांछनीय विकास दिखाई नहीं देता। इससे समाज में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था की अक्षमता का पता तो चलता ही है साथ ही यह बात भी साबित होती है कि सुदृढ़ भावी पीढ़ी के निर्माण के लिए अलग ढंग की शिक्षा पद्धति की जरूरत है।

सावित्री के जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि वह विकृत मूल्यों वाले अपने परिवार की गाड़ी को बेहतर ढंग से चलाने का सपना देख रही थी, लेकिन उसे इस बात का ज्ञान नहीं कि विकट संकट में धंसी इस परिवार की गाड़ी को चलाने के लिए उसे किस दिशा में कितनी शक्ति के साथ धकेलना होगा।

सावित्री परिवार के लिए अर्थ जुगाड़ने को ही सबसे बड़ी समस्या समझती थी। लेकिन क्या सिर्फ अर्थ के जुगाड़ से ही इस परिवार की दशा सुधर सकती थी ? या फिर सावित्री की अर्थ और अधिक सुख सुविधाएं भोगने की चाह ही इस परिवार की बदहाली के लिए जिम्मेदार थी ? इस संदर्भ में पुरुष चार का सावित्री को कहा गया यह कथन द्रष्टव्य है-

“तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है- कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना।”⁵

गौर से देखें तो सावित्री बाजारवादी मूल्यों से संचालित इस व्यवस्था में अपनी इच्छाओं पर अंकुश नहीं लगा पाई। उसकी विकृत इच्छाओं ने ही उसे शिवजीत, जगमोहन, संघानिया और मनोज जैसे अलग-अलग पुरुषों से संबंध बनाने के लिए मजबूर किया। विकृत इच्छाओं के चलते उसके स्त्रित्व का स्खलन हुआ। अपने युग की आधुनिक नारी के संबंध में महादेवी वर्मा ने वर्षों पहले अपनी चिंता ज़ाहिर की थी। इस संदर्भ में महादेवी वर्मा के ‘नये दशक में महिलाओं का स्थान’ लेख की यह पंक्तियां द्रष्टव्य है-

“समाज के अनेक संबंधों का केन्द्र होने के कारण भारतीय नारी और विशेषतः नवीन पीढ़ी की नारी में जो अस्थिरता उत्पन्न हुई, उसने अतीत से चली आयी अनेक मान्यताओं को खंडित कर दिया है और अनेक समस्याओं को जन्म दिया है।”⁶

स्त्रियों के घर के बारह निकलने का कारण केवल अर्थाभाव ही नहीं मानसिक तनाव भी हो सकता है। महादेवी ने अपने लेख में इस बात की ओर भी इशारा किया था। इस संदर्भ में महादेवी की यह पंक्तियां द्रष्टव्य हैं-

“वर्तमान परिस्थितियों में घर के साथ विश्राम या शान्ति की संगति नहीं बैठती। संबंधों में संघर्ष और कटुता, जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं का अभाव, घर में कोई निश्चित केन्द्र संचालक न होने के कारण अव्यवस्था आदि ने मिलकर घर के वातावरण से किसी मानसिक लगाव को असंभव कर दिया है। इस स्थिति ने गृहिणी ही नहीं तरुण तरुणियों पर भी अस्वस्थ प्रभाव डाला है। कभी-कभी आर्थिक कारणों से और कभी घर के वातावरण से मुक्ति पाने के लिए शिक्षित नारी बाहर कार्य खोजती है।”⁷

यह कहने की जरूरत नहीं है कि सन् 1942 में महादेवी द्वारा लिखी गयी। ये पंक्तियां सावित्री के परिवार की हकीकत से कितना मेल खाती हैं।

विकृत आधुनिकता के प्रवाह में स्त्री को बह जाने से आगाह करने वाली महादेवी ने बहुत पहले ही आधुनिकता से प्रभावित अपने युग की स्त्रियों के लिए यह कहा था कि-

“आज उसे अपने रूप, अपने शरीर और अपने आकर्षण का जितना ध्यान है, उसे देखते हुए कोई भी विचारशील स्त्री को स्वतंत्र नहीं कह सकेगा। ...आज की सुन्दर नारी भी पुरुष के निकट और कोई विशेष महत्व नहीं रखती। उसे स्वयं भी इस कटु सत्य का अनुभव होता है, परन्तु वह उसे परिस्थिति का दोष मात्र समझती है।”⁸

स्त्री पर मंडराते इस संकट से जूझने के लिए महादेवी ने स्त्रीत्व और मातृत्व को कसकर पकड़ने की राह बताई थी। सावित्री के हाथों से स्त्रीत्व और मातृत्व की डोर छूटती चली गई। बाजारवाद से प्रेरित विकृत इच्छाओं की नदी में वह दूर तक बहती चली गई। उसमें स्त्रीत्व के स्खलन ने उसे शक्तिहीन बनाया। इस शक्तिहीनता का फायदा अलग-अलग पुरुषों ने उठाया। सावित्री जैसी स्त्री को आर्थिक दृष्टि से कहीं ज्यादा मानसिक दृष्टि से सशक्त करने की जरूरत है। आज भी कई मध्यवर्गीय परिवारों में स्त्री ऐसे हालात से गुजर रही है। मन के तारों को बांधने की शक्ति प्रदान करने वाले साहित्य का जीवनोपयोगी विश्लेषण इनकी मदद कर सकता है। महादेवी वर्मा का साहित्य इसी कोटि का है। लेकिन ऐसे साहित्य को आधार बनाकर स्त्री सशक्तिकरण शिविरों का आयोजन कैसे हो ? यह अलग से सोचने का विषय है।

वैदिक विवाह के मत के तहत स्त्री और पुरुष का दामपत्य संबंध तभी सार्थक दिखता है जब इस संबंध से उनके जीवन के साथ-साथ उनका परिवेश भी लाभान्वित हो सके। समाज की सबसे छोटी इकाई व्यक्ति ही परिवेश के निर्माण के लिए जिम्मेदार होता है। विकृत पूंजीवादी मूल्यों के इस दौर में व्यक्ति अपनी ही इच्छाओं को लेकर इतना व्यस्त रहता है कि परिवेश की तरफ उसकी नजरें ही नहीं जाती। इसके चलते स्वार्थ केन्द्रित परिवेश तैयार होता जा रहा है। इस संदर्भ में प्रसाद की यह पंक्तियां द्रष्टव्य हैं-

“अपने में सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा ? यह एकान्त स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा ?

महेन्द्र और सावित्री के स्वार्थ केन्द्रित विकृत संबंधों ने परिवार को गहरे सांस्कृतिक संकट में धकेल दिया। बिन्नी के दामपत्य जीवन की समस्याएं, छोटी लड़की का वक्त के पहले सयाना होना, लड़के की उद्देश्यहीनता की जड़े सावित्री और महेन्द्रनाथ के संबंधों में छिपी हैं। परिवार को आगे बढ़ने की दिशा देने वाले सकारात्मक संस्कार इस परिवार में पनप ही नहीं पाए। इच्छा-ज्ञान-क्रिया में सामंजस्य, इच्छा का संतुलित विकास, सामर्थ्य को देखते हुए आगे बढ़ने की परिकल्पना बनाने की ताकत, घर में सहयोग का वातावरण तैयार करने की क्षमता, संतानों की इच्छाओं और मांगों के संतुलित विकास पर नजर रखते हुए उनकी परवरिश, आत्मविश्लेषण और परिवार के साथ-साथ परिवेश को भी समृद्ध बनाने की कोशिश सकारात्मक संस्कारों के अंग कहे जा सकते हैं। ये संस्कार परिवार को बांधने वाले संस्कार हैं। जो परिवार के साथ-साथ सामाजिक परिवेश में भी स्वस्थ मूल्यों का संचार करते हैं।

संस्कार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में प्रवाहित होते रहते हैं। इसलिए स्वस्थ सामाजिक के निर्माण के लिए स्वस्थ संस्कारों के विकास पर नजर रखना जरूरी है। संस्कारों के बहने की हकीकत को मोहन राकेश ने बिन्नी और माँ के बीच होने वाली बातचीत में बखूबी पकड़ा है। बिन्नी उसके बारे में मनोज की कही बात को माँ से कहती है-

“मैं इस घर से ही अपने अंदर कुछ ऐसी चीज लेकर गई हूँ जो किसी भी स्थिति में मुझे स्वाभाविक नहीं रहने देती।”¹⁰

इस गहरे सांस्कृतिक संकट के दौर में समाज में स्वस्थ संस्कारों के विकास के लिए सार्वजनिक स्तर पर क्या कदम उठाए जा सकते हैं यह सोचने की बात है।

मनुष्य की अंतरात्मा आनंद की भूखी होती है। इसी आनंद को सगुण भक्त कवियों ने आत्मा को सच्चिदानंद का अंग बताते हुए लीलाओं में खोजा तो संत ओर सूफियों ने ज्ञान और प्रेम से पाने की कोशिश की। पूंजीवादी समाज में इस आनंद को हासिल करना दुर्लभ हो गया है। दरअसल पूंजीवाद आदमी की नजर को सुख सुविधाओं में फंसाकर उसे अपनी आत्मा की गहराई में उतरने ही नहीं देता। बाहरी सुख-सुविधाएं शरीर को तुष्ट करती हैं आत्मा को नहीं। सुख सुविधाओं के पीछे अंधी दौड़ आदमी को स्वकेन्द्रित तथा स्वार्थकेन्द्रित बना देती हैं। इससे आत्मा का विकास अवरूद्ध हो जाता है। तभी ‘मुक्तिबोध’ पूंजीवादी समाज में आत्मा की मुक्ति का सवाल उठाते हैं। आत्मा की मुक्ति कैसे संभव है? यह सोचने का विषय है। इस बात में दो राय नहीं कि ज्ञान के बिना आत्मा की मुक्ति के कार्य को अंजाम देना संभव नहीं है। लेकिन यह ज्ञान निश्चित रूप से बचपन से विद्यार्थियों को सिर्फ आजीविका कमाने के लिए तैयार करने वाला ज्ञान नहीं है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था विद्यार्थियों को जिंदगी के जंग के लिए तैयार करती है। उन्हें बाजार के लिए उपयुक्त बनाती है। यही शिक्षा व्यवस्था ‘आधे-अधूरे’ नाटक के अशोक

और किन्नी जैसे बाई-प्रोडक्ट भी तैयार करती है। जिनके जीवन में उद्देश्यहीनता और भटकन के सिवाय कुछ नहीं दिखता। आत्मा को मुक्त करने वाला ज्ञान व्यक्तियों को जीवन में सौंदर्य की स्थापना करने की कला सिखाता है। दरअसल जीवन सौंदर्य की परिभाषा और इस सौंदर्य के अवयवों का नये सिरे से निर्धारण अब वक्त की जरूरत बन चुका है।

जीवन सौंदर्य को समझने और उसकी सृष्टि करने की कला के अभाव में नजाने कितने सावित्री और महेन्द्रनाथ के परिवार बर्बाद होते जा रहे हैं। साहित्य में सौंदर्य की काफी व्यापक अवधारणा मिलती है। लेकिन समाज में प्रचलित सौंदर्य की समझ बाहरी तामझाम या स्थूल रूपगत स्तर से ऊपर नहीं उठ पाई है। इससे यह भी साबित होता है कि साहित्य और समाज के बीच दूरी बड़ी है। साहित्य के मूल्य समाज की धड़कन को नहीं छूते। समाज अगर ऊपरी तामझाम के पीछे बेहताशा दौड़ता रहा तो साहित्य की कद्र करने वाले लोग घटते चले जाएंगे तब सौंदर्य को समाज में प्रतिष्ठित करने का काम और मुश्किल हो जाएगा।

आज का व्यक्ति सुख, शान्ति और आनंद की तलाश में जिदंगी भर दौड़ता है लेकिन वह समझ ही नहीं पाता कि उसकी नजर जीवन में सौंदर्य स्थापित करने के लिए तड़प रही है। सावित्री परिवार में सब कुछ ठीक करना चाहती है। यह ठीक ही तो सौंदर्य है। यह सौंदर्य क्या सिर्फ आर्थिक सम्पन्नता से स्थापित हो जाएगा ? अगर ऐसा होता तो धनवानों को कभी सुख, शान्ति का अभाव नहीं होता। जिस सौंदर्य की तलाश सावित्री को है वह आत्मा का सौंदर्य, विचारों का सौंदर्य, पारिवारिक सदस्यों के आपसी संबंधों में सौंदर्य, जीवन जीने की सुन्दर कला का समटोटल है। इसमें कोई दो राय नहीं कि इसे सिर्फ अर्थ के जरिए हासिल करना संभव नहीं है। किसान जैसे खेत सींचकर, बीज बोकर फसल उगाता है परिवार में इस सौंदर्य को स्थापित करना भी उतना ही समय सापेक्ष है। आज की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि लोग 'हर चमकने वाली चीज सोना नहीं होती' यह जानते हुए भी बाहरी चमक दमक के आकर्षण में फंसे रहते हैं।

'आधे-अधूरे' नाटक सिर्फ समस्या को ही नहीं उभारता बल्कि समस्या के समाधान की राहों की ओर भी इशारा करता है। मसलन चीज़ के डिब्बे के न खुलने का प्रसंग देखिए। बड़ी लड़की जब डिब्बा खोलने के लिए टीनकटर लाती है तो लड़का कहता है इस टीन कटर की नोक मर चुकी है। डिब्बे में भरी चीज सबको पसंद है पर खोलने का रास्ता नहीं मालूम है। ये डिब्बा अंतर्मन में छिपे समाधानों का पुंज है। हर कोई पारिवारिक समस्या का समाधान चाहता है। लेकिन डिब्बा खोलना ही संभव नहीं हो पाता। इसलिए बड़ी लड़की डिब्बे में रखे चीज की जगह मक्खन से सैंडविच बनाती है। लड़के

और लड़की के बीच डिब्बा खोलने की बात के साथ-साथ होने वाली परिवार संबंधी बातें इस बात-चीत को कुछ हद तक प्रतीकात्मक स्तर पर ले जाती है।

नाटक में सावित्री के घर हर कोई बाहर के दरवाजे से आता है और वहीं से बाहर चला जाता है। केवल नाटक के अंत में पुरुष चार ही पीछे के दरवाजे से आता है। उसके आने पर बड़ी लड़की का यह कथन द्रष्टव्य है कि-

“मैंने सोचा कि कौन हो सकता है जो पीछे का दरवाजा खटखटाए। आपका पता था आप आनेवाले हैं पर आप तो हमेशा आगे के दरवाजे से आते हैं।”¹¹ नाटक में पुरुष चार का पीछे के दरवाजे से आना और सावित्री के परिवार से जुड़ी समस्याओं को चित्तवृत्ति से जोड़कर विश्लेषित करना भी मोहन राकेश की एक खास सोच को उद्घाटित करता है। दरअसल मोहन राकेश वक्त के साथ विकसित होती गई मानसिकता और उससे प्रभावित अपने आचरण को पीछे मुड़कर देखने और उसकी छानबीन करने की अपील करते हैं। वे अतल गहराइयों में पैठी समस्या की जड़ों को देख रहे थे और बड़े कलात्मक ढंग से ‘आधे-अधूरे’ में इससे जूझने की जीवन दृष्टि देने की भी कोशिश कर रहे थे।

छोटी लड़की से जुड़ी तमाम समस्याएं अवचेतन स्तर की हैं। अवचेतन मन का प्रतीक है वह अंदर का कमरा जहाँ उसे कैद कर दिया जाता है। लेकिन उस परिवार का एक भी सदस्य ऐसा नहीं है जो भीतर के कमरे में जाकर उसकी समस्या को समझने की कोशिश करे। गौर करें कि अन्दर वाले कमरे में ही महेन्द्रनाथ की छड़ी है। उसे उस छड़ी की जरूरत है लेकिन गलत ढंग से जिंदगी का सफर तय करने के कारण वह छड़ी तक नहीं पहुँच पा रहा।

गौर से देखें तो ‘आधे-अधूरे’ नाटक में परिवार के अधिकतर सदस्य बाहर के दरवाजे से आते हैं और घर से ऊबकर बाहर के दरवाजे से ही निकल जाते हैं। बाहर के दरवाजे से आने और जाने वाले बाजारवादी मूल्यों से प्रभावित हैं। अंतर्मन को टटोलकर देखने की आदत इनमें नहीं है। नाटक में उद्घाटित तमाम समस्याओं से बाहर निकलने की चाभी आत्मान्वेषण आत्मविश्लेषण और सृजन के संस्कार के आत्मनिवेश में छिपी है। तभी आत्मा के आनंद को दीमक की तरह सफाचट करते विकृत बाजारवादी मूल्यों को चुनौती दी जा सकती है।